

वीर निर्वाणोत्सव पर्व २००२

(आदरणीय बाबू जुगलकिशोर जी 'युगल' के अक्षरशः प्रवचन)

भगवान महावीर का निर्वाण पर्व है। आज का दिन लोकोत्तर दृष्टि से महामंगल स्वरूप है। भगवान आज अपने संपूर्ण पुरुषार्थ के द्वारा मुक्ति को.. अपने अंतिम ध्येय को प्राप्त करके महामंगलस्वरूप, परमसौख्यस्वरूप हो गये। और हमें एक प्रशस्त मार्ग.. **मुक्ति का सुंदर मार्ग हमें बता गये; कि जिसपर हमें चलने का और प्राप्त करने का आज के दिन संकल्प करना चाहिए। संकल्प का दिन है, खाली भगवान की पूजा का दिन नहीं है।** पूजा का भाव.... तो जिन महावीर परमात्मा ने जीवन में महान परीश्रम करके इतना ऊँचा पद प्राप्त किया और हमारे लिए एक आदर्श स्थापित किया उस मार्ग पर चलने का, उनके प्रति भक्ति का उछलता भाव आना आवश्यक है, बहुत आवश्यक है। आता ही है.. और हम लोग प्रतिवर्ष ये निर्वाण पर्व मनाते ही हैं।

भगवान तो मुक्ति पहुँचकर परम आनंद में झूल रहे हैं। आज प्रातःकाल की जो सुहावनी बेला है, उससे थोड़े समय पहले भगवान एक समय मात्र में इस धरती से.. इसी धरती से जिस पर हम विचरते हैं, उस धरती से निर्वाण पधार गये और आनंद की हिलोरें लेने लगे; अनंत काल तक लेते रहेंगे। उस आनंद की महिमा जबतक हमारे हृदय में नहीं जागेगी तब तक वह मिलने वाला नहीं है, (०५:००) और उस महिमा के लिए उस आनंद का स्वरूप जानना बहुत आवश्यक है। जगत की.. संसार की जो रागात्मक दशाएँ हैं, वहाँ वो सुख नहीं मिलता है। और उन रागात्मक दशाओं के जो विषय हैं – जगत के पदार्थ, पाँच इन्द्रियों के विषय; वहाँ उनकी रंचमात्र भी गंध नहीं है। तो ये बहुत आवश्यक है कि जो मुक्ति के परमध्ययस्वरूप निर्वाण के उस आनंद के स्वरूप को जानकर उसका (रागात्मक दशाओं का) विश्वास नहीं करता, उसमें जिसको प्रीति नहीं लगती, जगत का जो कहा जाने वाला सुख है, उस सुख को जिसने अपने कलेजे से निकाल कर फैंक दिया हो, अलग कर दिया हो; उसकी बात जो सुनना ही नहीं चाहता हो, उसकी बात सुनने में जिसे भीतर से वमन होता हो, ऐसी चित्त की स्थिति बन जाए और सुख तो वास्तव में इन सारी इन्द्रियों से पार, विषयों से पार, भगवान वर्धमान ने जिसको प्राप्त किया, निश्चित रूप में वही है – ऐसा जानकर जो उसके प्रति लालायित रहता है, वो भव्य है। ये भव्यता की निशानी है। उसका मोक्ष हो जाएगा। लेकिन **केवल भगवान के गीत गाने से यह काम नहीं होगा, होगा ही नहीं।**

तो आज अंतिम तीर्थंकर.. हमारे सबसे निकटवर्ती रिश्तेदार, जिनके बाद फिर कोई तीर्थंकर होनेवाले ही नहीं थे... मुक्ति का जो मार्ग है वही बंद सा हो गया। यद्यपि आज भी जो भव्य हैं, जो विवेकी हैं, आत्मस्वरूप के लोलुप हैं वे लोग आज भी अपने भीतर रत्नत्रय धर्म को प्रकट करके मोक्षमार्गी बन जाते हैं, आज भी बनते हैं; पर मुक्ति नहीं जाते... तो चले जाएँगे आगे। वो तो और भी गहरी है बात। मुक्ति जाना, नहीं जाना... वो जो चरमावस्था है, उसमें तो स्थिति ये हो जाती है – ये जाने और आने की बात... **‘क्या है ये? (१०:००) मुझे कहाँ जाना और कहाँ नहीं जाना? मैं तो कहीं आता-जाता नहीं हूँ, आता-जाता वो है जिसका कोई काम बाकी रह गया हो, जिसको कोई कमी हो। मैं तो कहीं भी... संसार में दुःख कहाँ है? दुःख तो केवल माना गया है। दुःख आत्मा के भीतर नहीं, दुःख जगत के पदार्थों में नहीं, दुनिया में नहीं’**; तो जब सारे विश्व में कहीं भी दुःख नहीं है, तो फिर ये दुःख पैदा कैसे हुआ जो प्रत्यक्ष अनुभव में आता है? ये केवल झूठी कल्पनाओं से, मिथ्या कल्पनाओं से इसका जन्म हो गया है। इसलिए जो तुरीयावस्था चरमावस्था है, उस चरमावस्था में तो एकमात्र शुद्ध चैतन्य की निष्ठा, न जन्म और न मरण, निर्वाण भी नहीं... भगवान महावीर की भी स्थिति यही थी। निर्वाण हुआ, पर भगवान महावीर नहीं चाहते थे कि मेरा निर्वाण हो, मैं तो निर्वाण स्वरूप हूँ। मेरा तो वर्तमान में ही निर्वाण है। निर्वाण किसको कहते हैं? बुझने को कहते हैं, बुझने को। नास्तिपरक है शब्द, निर्वाण होना अर्थात् कुछ अभाव

होना। क्या अभाव हुआ? सचमुच देखा जाए तो शुद्धात्मा ज्यों का त्यों, वही का वही विराजमान। जो यहाँ था, वही वहाँ है। और यदि कहा जाए निर्वाण शब्द के लिए... तो मोह-राग-द्वेष का निर्वाण हुआ। दीप निर्वाण माने दीपक का बुझना। तो सचमुच एक दृष्टि से देखा जाए तो आज एक महान दीपक बुझ गया। सदा के लिए लोगों को तीर्थकरों की देशना का अभाव हो गया।

तो आज उस प्रातर्वेला में भगवान का निर्वाण हुआ और उसी की स्मृति में हम निर्वाण मोदक चढ़ाते हैं। मोदक घनत्व का प्रतीक होता है, घना मानो संसार में हमारी जो बिखरी हुई वृत्तियाँ हैं.. राग-द्वेष, पुण्य-पापादि के द्वारा जो बिखरी हुई वृत्तियाँ हैं, ये सारी बिखरी हुई वृत्तियों का जो एक घट बन गया, अनंत गुण हैं आत्मा में, अनंत ही गुणों की पर्यायें घनत्व लेकर और उस शुद्धात्मा की ओर प्रवाहित हो चली। शुद्धात्मा में शुद्धात्मा को विषय करने लगी। इसका नाम निर्वाण है। तो इसलिए परंपरा भी ऐसी है (१५:००) और मोदक सार्थक शब्द भी है, इसलिए हम भगवान को मोदक समर्पित करते हैं।

७२ वर्ष की अवस्था में भगवान का निर्वाण हो गया। ७२ वर्ष के तो हम लोग कितने ही हैं। हमको थोड़ा भीतर से संकोच होना चाहिए। अरे! उस महापुरुष ने इतनी सी अवस्था में इतना महान पुरुषार्थ करके परम साध्य को प्राप्त कर लिया, कैसी अनूठी बात है!! और ये जमाना.. ऐसा ही जमाना... जैसा जमाना आज है, वैसा ही जमाना भगवान महावीर के समय था। जन्म होने के बाद ३० वर्ष की अवस्था तक विवाह नहीं किया और दीक्षा धारण कर ली। माता-पिता को बहुत मनाना पड़ा। कौन छोड़ता है अपने पुत्र को? फिर भी दीक्षा धारण की, ४२ वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया और केवलज्ञान होते ही दिव्यध्वनि होती है न। पर भगवान महावीर की ६६ दिन तक नहीं हुई। वो भी एक अलग कथा है। नहीं हुई क्योंकि गणधर उपलब्ध नहीं हुए। ६६ दिन के बाद श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को गणधर की उपलब्धि हुई इन्द्र के प्रयास से और भगवान की दिव्यध्वनि खिरी। ३० वर्ष तक विहार किया और लाखों लोगों का कल्याण हुआ। ३० वर्ष तक विहार हुआ। विहार प्रान्त कहलाता है न, वो इसी स्मृति में कहलाता है। भगवान का विहार अधिकांश उसी क्षेत्र में हुआ और बहुत लोगों का हित हुआ।

तो ऐसा जो पवित्र दिन है निर्वाणपर्व... निर्वाणदिवस या मुक्तिपर्व, भगवान महावीर का मुक्तिपर्व। मुक्ति में तो आठों गुण खिल गये, आठों गुणों की आठ प्रकार की पर्यायें हिलोरें लेने लगीं। ये तो मुक्तिपर्व। निर्वाण माने मोह-रागादि का अभाव हुआ तो मुक्ति मिली। इस तरह उस मुक्तदशा में भगवान अनंतकाल तक अनंत सिद्धों के साथ आनंद में विहार करते रहेंगे, ये कोई सामान्य बात नहीं है। निर्वाण पर्व.. यदि हम वास्तव में इसको मानते हैं और हमें निर्वाण के सुख का स्वरूप मालूम है (२०:००) और हम हृदय से चाहते हैं कि इस विश्व में तो मुझे पैर भी नहीं रखना है, मुझे तो निर्वाण का वो सुख ही चाहिए.. अतीन्द्रिय सुख। शुद्धात्मा का जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसके फव्वारे छूटें आत्मानुभूति में.. मैं तो उसका अभिलाषी हूँ। ऐसा इस निर्वाणपर्व के दिन हमारी भावनाएँ हों और पुनः पुनः उस शुद्धात्मा का चिंतन हो तो निर्वाणपर्व की सार्थकता है।

पर्व तो है निर्वाण का, अतीन्द्रिय आनंद का, सुख का, वो किस तरह मनाया जाता है? जैसा हम आज मनाते हैं, क्या निर्वाणपर्व उस तरह मनाया होगा लोगों ने? सचमुच तो भगवान के लिए तो यह आनंद का दिन है। परम आनंद प्राप्त किया, परम सुख प्राप्त किया, लेकिन हम लोगों के लिए ये कोई सुख का दिन नहीं, हम लोगों ने तो एक इस देश का जो सूर्य था.. अध्यात्मसूर्य – वो खोया है। उसका विरह हुआ है और सचमुच उसके विरह में लोगों को कितना दुःख हुआ होगा, ये वो जमाना ही जानता है। वे लोग ही जानते हैं लेकिन हमें उसकी कल्पना तो करना चाहिए। अरे! उनके लिए भगवान खो गये लेकिन क्या हमारे लिए नहीं खोये? तीर्थकरों की आयु तो बहुत लम्बी होती है। अगर आज भगवान महावीर होते तो हम धन्य होते न। भगवान की दिव्यध्वनि, भगवान की देशना मिलना वह कोई सामान्य प्रसंग तो नहीं है। इसलिए सचमुच तो लोगों के आँसू टपके होंगे। अरे! कोई लोगों ने.. आज जो पर्व का नाम दीपावली कर दिया गया है, तो क्या लोगों ने दीपकों की लाइन लगाई थी मच्छर मारने के लिए!

दीपकों की लाइन लगाई लोगों ने?!! हाँ, गौतम को केवलज्ञान हुआ इसी दिन, जिस दिन भगवान का निर्वाण हुआ। भगवान गौतम को भी केवलज्ञान हुआ तो क्या वहाँ भी दीपकों की लाइन लगाई? इतने विवेकी नहीं थे वे लोग?!

लेकिन निर्वाणपर्व तो हमारे मुँह से ही निकल गया, दीपावली नाम रह गया। और वो भी पूरा लौकिक.. पूरा लौकिक। जिस दिन लोगों ने उपवास किया होगा, उस दिन हम मिठाइयों के ढेर करते हैं। माने लोक से इस तरह जुड़ गया है ये.. इतना विरुद्ध, इतना विपरीत हो गया है कि हम इस दिन के लिए न मालूम क्या-क्या करते हैं? पहले से घरों की तैयारियाँ करते हैं, मिठाइयाँ बनाते हैं, मिठाइयाँ खाते हैं, मिठाइयाँ घर-घर पहुँचाते हैं.. डब्बे के डब्बे आते-जाते हैं। और न मालूम क्या-क्या करते हैं? (२५:००) दीपदान.. दीपकों का दान करते हैं। एक घर से दूसरों के घर पर दीपक रखा जाता है। फिर वो हमारे यहाँ दीपक रखते हैं। ये दीप का भी दान होता है?!

लेकिन हमने सबकुछ अपना लिया। और उसे पूरा लौकिक व्यवसाय से जोड़ दिया है। मानो ये निर्वाणपर्व नहीं व्यावसायिक पर्व है। मुझे आश्चर्य होता है कि किसी के मस्तिष्क में ये चीज नहीं आई, आज तक नहीं आई... और ये बात ज्यों की त्यों चलती रही। सवेरे भगवान की पूजा पूरी हो जाती है निर्वाण मोदक चढने के बाद, इसके बाद तो केवल शुद्धात्मा का चिंतन, भगवान का पुनः पुनः स्मरण, भगवान के आनंद का पुनः पुनः स्मरण और भगवान के विरह के आँसू ये शेष रह जाते हैं। और कुछ शेष नहीं रहता। लेकिन ये तो मंदिर से निकलने के बाद सब समाप्त हो जाता है, पूरा समाप्त। फिर याद भी नहीं आती। इसके बाद दूकानों पर फिर पूजा करना, वहाँ पर सारे कागज अपने व्यवसाय के.. अपने बही-चौपड़े फैलाना और उनमें स्वस्तिक करना और क्रिया करना। लोग तो लक्ष्मी रखते हैं, पैसों के ढेर रखते हैं.. लक्ष्मी है क्या उसका नाम? लक्ष्मी है वो? लक्ष्मी तो ये थी न.. मुक्तिलक्ष्मी! ये लक्ष्मी है या वो लक्ष्मी है? उस लक्ष्मी के ढेर करते हैं। और ये सब होता है। कोई बोलने वाला नहीं, कहने वाला नहीं कि ये चीज बिल्कुल विपरीत है निर्वाणपर्व के। निर्वाणपर्व को मनाने का यह रूप नहीं है।

निर्वाण एक शांति का दूसरा ही मार्ग है कि जिसमें ये लौकिक बातें आती ही नहीं, इनका वहाँ पर समावेश ही नहीं है। वहाँ तो एक मात्र शुद्धात्मा और भगवान वर्धमान – ये दो ही शेष रह जाते हैं। और कोई नहीं रहता। हमारी पूजा के जो पात्र हैं भगवान वीर.. उन भगवान वीर के गुणों का, उनके आनंद का पुनः पुनः स्मरण और इधर अपने शुद्धात्मा का स्मरण। और हो सके तो लोग उपवास करें।

उसके स्थान पर घर जाते ही मिठाइयाँ खाने लगते हैं। मिठाइयाँ बनाते हैं। मिठाई किस बात की बनाई ये? अपने घर में किसी का इस दिन विरह हो जाए.. दीपावली को विरह हो जाए तो दीपावली मनेगी? बरसों.. फिर तो बरसों के लिए छूट जाएगी, मनेगी दीपावली? मिठाइयाँ बनेंगी?!! तो भगवान महावीर उससे गये-बीते? ये स्थिति आज हमारी हो गयी है। कुछ पता नहीं है, गृहीत मिथ्यात्व का पता नहीं है। ये सारा गृहीत मिथ्यात्व है। अरे! एक बार पूजा करने के बाद दूकान पर किसकी पूजा? वहाँ कौन पूजने लायक है? और किसके लिए पूजा? यह सब कम से कम हम.. जो सुनते हैं, उन लोगों को तो यह बात बंद करना चाहिए। सचमुच तो ये लौकिक वायुमण्डल में निर्वाणपर्व इस तरह मिट गया है घुलकर कि अब उसका नाम लेने का काम नहीं है। सवेरे पूजा के बाद, उसका नाम कोई नहीं लेता है। (३०:००) और हँसी-खुशी.. हँसी-ठठे दिनभर.. ये काम होता है।

इसलिए निर्वाणपर्व यदि वास्तव में मनाना हो, तो उसका सच्चा जो मार्ग है.. वो तो आत्मानुभूति है। आत्मानुभूति नहीं हुई हो तो निर्वाणपर्व को आत्मानुभूति का प्रयत्न हो। और आत्मानुभूति तब होती है कि जब एकमात्र सारे विश्व में एक ओर ये शुद्धचैतन्यतत्त्व हमारा और दूसरी ओर ये सारा विश्व। और सारा विश्व.. इतना जानकर विश्व से आँख बंद कर लेना, विश्व का दिखाई ही नहीं देना; अरे! विश्व का क्या नहीं दिखाई देना, हमारी जो पर्यायें हैं.. अशुद्ध पर्यायें तो दूर लेकिन शुद्ध पर्यायें.. वो शुद्ध पर्यायें भी न दिखाई दें..... (कैसेट साइड चेंज)

..... शुद्ध पर्याय है वो हेय तत्त्व है। जो हेय तत्त्व है, वो आत्मा नहीं है। एकबार तो पर्याय को अनात्मा मानकर इस तरह भुला दिया जाए कि पर्याय की याद ही न आए। शुद्धात्मा पर ऐसा समर्पण हो कि जगत की कोई भी घटना,

जगत का कोई भी प्रसंग हमारे सामने आए; जिसे अनुकूल-प्रतिकूल कहते हैं। कहते हैं लेकिन है नहीं.. अनुकूल-प्रतिकूल कहते हैं, वहाँ हमारे शब्द यह हों - *‘इससे मुझे क्या?’* आधि-व्याधि हो, शरीर की कैसी भी स्थिति कुछ भी हो, उसमें ज्ञानी का केवल एक ही शब्द होगा - *‘इससे मुझे क्या? इससे मुझे क्या प्रयोजन?’* अरे भाई! इतनी बड़ी व्याधि है न! और इतना कष्ट है न! *‘यह कष्ट जहाँ है, वह तो बोलता ही नहीं है, वह तो शिकायत ही नहीं करता है। और मैं इतना बेवकूफ... जहाँ व्याधि भरी हुई है चारों ओर, उसकी ओर से मौन स्वर भी नहीं और मैं शिकायत करता हूँ कि मुझे व्याधि है! यह कौनसा ज्ञान है!?’*

इसलिए जितने प्रकरण हों, राग-द्वेष-मोह के प्रकरण हों; उन राग-द्वेष-मोह के प्रकरण में भी हम राग-द्वेष-मोह को तोड़ना चाहते हैं, दूर करना चाहते हैं। उनको दूर करने का मार्ग यह नहीं कि हम राग-द्वेष-मोह के पीछे लग जाएं.. ‘इनको दूर करके रहेंगे, ये कैसे दूर हों?’ केवल इन विकल्पों से राग-द्वेष बढ़ने वाले हैं क्योंकि ये विकल्प और बढ़ गए न उसके साथ में। ये भी राग के विकल्प हैं, द्वेष के विकल्प हैं, इससे राग-द्वेष-मोह मिटने वाले नहीं हैं, कैसे मिटेंगे? राग-द्वेष-मोह जहाँ हों, वहाँ भी ज्ञानी का वचन है *‘इससे मुझे क्या? इससे मुझे क्या मतलब? ये मेरे में हैं ही कहाँ जो मैं इसकी शिकायत करूँ। मेरे भीतर इसका नामोनिशान नहीं है, इसलिए मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं है। ये यहाँ रहे मेरे साथ, तो साथ रहे; लेकिन मैं तो इससे सदा से ही, अनादिकाल से ही दूर हूँ और अनंतकाल तक.. अनंत सिद्धदशाओं में भी इससे दूर ही रहने वाला हूँ। मेरा तो राग-द्वेष-मोह भी कोई बिगाड़ नहीं करता।’* हद है यह बात!

क्या बिगाड़ किया? हमने राग-द्वेष-मोह में आत्मा के विरुद्ध, (३५:००) आत्मा की शुद्धता के.. आत्मा की पवित्रता के.. आत्मा की ध्रुवता के.. आत्मा की अविनश्वरता के विरुद्ध हमने कितने ही विकल्प किए, कितनी ही मिथ्या कल्पनाएँ कीं, लेकिन राग-द्वेष-मोह ने शुद्धात्मा को छुआ नहीं। और शुद्धात्मा ने राग-द्वेष-मोह की ओर झाँका तक नहीं। ऐसा जो कृतकृत्य तत्त्व है.. कृतकृत्य.. सारा जिसका काम हो चुका है, कोई काम जिसका बाकी (नहीं रहा)। कब हुआ? कि अनादि से ही कृतकृत्य है और अनंतकाल तक कृतकृत्य रहेगा। उस कृतकृत्यता का.. ज्ञानदशा से लेकर.. आत्मानुभूति की दशा से लेकर और सिद्धदशाओं तक ज्ञानी लोग अनुभव किया करते हैं। उस कृतकृत्य आत्मस्वभाव का.. शुद्धात्मा का। ये ज्ञानियों का काम है। और कहते हैं कि *जगत की ओर झाँकना मेरे लिए पाप है, मैं देख चुका हूँ। मैंने जगत का स्वरूप जान लिया है, और जानकर यह जाना है कि अब इसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखना।* और पर्याय? कहते हैं कि पर्याय का भी यही हाल है। *पर्याय की क्षणभंगुरता का स्वरूप जानकर मैंने यह जाना कि मुझे पर्याय का नाम ही नहीं लेना है, क्योंकि मैं पर्याय ही नहीं हूँ।* जिस शुद्धात्मा के लिए पर्याय हेयकोटि में जाता हो अर्थात् अनात्मा की कोटि में जाता हो - उसका आत्मा नाम क्यों ले.. उसकी आत्मा चर्चा क्यों करे? और तब वह पर्याय शुद्ध होकर, शुद्ध रत्नत्रयरूप होकर उस शुद्धात्मा के पीछे-पीछे भागती है। फिर भी शुद्धात्मा उसकी ओर नहीं झाँकता। भगवान सिद्ध का जो शुद्धात्मा है.. वो कभी भी उन शुद्ध पर्यायों की ओर नहीं झाँकता। अनंत शुद्ध पर्यायें.. अतीन्द्रिय आनंद जो नया पैदा हुआ है... नया पैदा हुआ न.. अतीन्द्रिय आनंद.. भगवान को पहले नहीं था न! *तो यह जो आनंद नया पैदा हुआ है, उसकी ओर शुद्धात्मा आँख उठाकर नहीं देखता.. सिद्धदशा में। ऐसी सर्वोत्कृष्ट जो दशा है, वो शुद्धात्मतत्त्व की है।*

इसलिए कोई भी परिस्थिति हो जगत की.. उसमें इतना मनोबल.. मनोबल आए निर्वाणपर्व पर.. मन का बल बढ़े। मन का बल बढ़कर और उपेक्षावृत्ति जागे। *जगत की उपेक्षा.. पर्याय की उपेक्षा.. पर्याय से मुझे क्या, पर्याय मेरी क्या लगती है, पर्याय मेरी कौन लगती है? मोक्ष की पर्याय भी मेरी क्या लगती है? वो भी मुझे नहीं चाहिए, क्योंकि मोक्ष की पर्याय जैसा जो आनंद है.. आनंद का जो दह है, वह मेरे भीतर भरा है.. वर्तमान में। तो ऐसा जो आनंद तत्त्व है, वो मैं हूँ। ऐसा सकल निरावरण.. अखण्ड एक.. प्रत्यक्ष प्रतिभासमय.. अविनश्वर.. शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण - ऐसा जो निज परमात्मद्रव्य है, वही मैं हूँ।* बस यह एक ही स्वर ज्ञानियों का रहता है। क्या हुआ मेरी पर्याय का.. मैंने इतना चिंतन किया, मैंने इतना विचार किया.. देखें थोड़ी शुद्धता आई कि

नहीं आई? अरे तुझे क्या मतलब है उससे!? *तू परमशुद्ध पड़ा है, वह तो शुद्ध होगी.. और शुद्ध होगी इस विधि से.. कि तू अपने-आप को परमशुद्ध (देख).. है तू और तू इसे स्वीकार कर। ऐसी परमशुद्ध दशा अपने-आप प्रकट होती है केवल शुद्धात्मा पर समर्पण से।* (४०:००)

निर्वाण दिवस बाह्यरूप में भगवान महावीर पर समर्पण का दिन है और वास्तव में शुद्धात्मा पर समर्पण का दिवस है। अन्य कोई काम इस निर्वाण पर्व का नहीं है। हमारी हँसियाँ और खुशियाँ बंद हों! पाप है ये! निर्वाणपर्व का अपमान किया है हमने आजतक। इसलिए इस पाप को बंद करो.. जितनी हिम्मत हो। घुल तो इतना गया है ये पर्व कि इसका नाम ही मिट गया है और केवल दीपावली हो गया है। लेकिन वास्तव में... ये तो रहेगा.. और इस पर्व की आराधना शुद्धात्मा की आराधना के द्वारा हम निरंतर करें, प्रतिपल करें। आज का दिन इसी तरह बीते। खाने-पीने, लोगों का बुलाने, लोगों के साथ हंसी-ठठ्ठ करने, मिठाइयाँ बाँटने – इसमें न बीते। या व्यवसाय के कामों में न बीते.. लेकिन इसमें हमारे पर्व का एक-एक क्षण व्यतीत हो तो आज का पर्व सार्थक होता है।

भगवान महावीर ने.. अभी तो २५०० वर्ष बीते हैं, २५०० वर्ष में कितनी दुर्दशा! २५०० वर्ष में हम भगवान महावीर का नाम लेते हैं, लेकिन भगवान महावीर और उनके निर्वाणपर्व को वास्तव में भूल गए। सचमुच भूल गए। अरे महावीर का नाम लेनेवालों को यह तो पता होना चाहिए कि महावीर ने किया क्या था, कि जिससे वो इतने आनंदमय हो गए। उस परमानंद को जो प्राप्त हो गए, उन्होंने किया क्या था? मुझे भी तो वो परमानंद चाहिए न, मैं भी तो अपनी कल्पनाओं से महादुःखी रहा हूँ न.. सदा से, अनादिकाल से। तो सारे दुःख को समाप्त करके मुझे भी वो परमानंद प्राप्त करना है – ऐसा जिसके मन में निष्ठा हुई, ऐसा जिसके मन में विश्वास जागा, तो वह सचमुच भगवान महावीर की उपासना करता है, और शुद्धात्मा की उपासना करता है। और इस तरह निर्वाण मिल जाता है, निर्वाण को बुलाना नहीं। निर्वाण का नाम नहीं लेना, मुक्ति का नाम नहीं लेना बार-बार.. मैं तो मुक्त तत्त्व हूँ वर्तमान में, केवल मुक्त तत्त्व हूँ। मुक्त तत्त्व को मुक्ति जाना (पड़ेगा)!? जो कभी कारावास नहीं गया हो, उसे कारावास से छूटना (पड़ेगा)? और उससे पूछे कोई.. कोई पूछ ले कि भई कब छूट कर आए, तो क्या स्थिति होगी? इसी तरह *जो शुद्ध चैतन्य है.. निरावरण.. निष्क्रिय.. परम आनंदमय.. उससे कभी यह मत पूछना कि तुम कर्मों से कब छूटे? कि मैं कर्मों से बंधा ही नहीं हूँ। झूठ है यह बात कि आत्मा कर्मों से बंधा है।* कहने की बात है।

दो चीजें पास-पास होती हैं, तो हम उसका एक व्यवहार प्रवर्तन करते हैं, उसका नाम कर्मों से बंधना है। यह प्रवर्तन होता है न। वस्तु का जब बदलता है... जैसे यह समयसार है। यह चौकी पर रखा गया, तो यह चौकी का समयसार कहलाया – यह व्यवहार प्रवर्तन, यह व्यवहार हो जाता है। इसी तरह कर्म आत्मा के निकट हैं.. वो तो सारे लोक में हैं, कहाँ नहीं हैं? तो कर्म आत्मा के निकट हैं और आत्मा ने कल्पना से अपराध किये तो वे आत्मा के निकट तो हुए। इसलिए आत्मा कर्मों से बंधा – यह बात कही जाती है, लेकिन *जिसको हम आत्मा कहते हैं वास्तव में.. शुद्धात्म सत्ता.. अनादि-अनंत अविनश्वर सत्तास्वरूप जो आत्मतत्त्व है, वो न कभी कर्मों से बंधा और न कभी कर्मों से छूटता है। वो वर्तमान में ही कर्मों से छूटा हुआ मुक्त है और परम आनंदमय है।* ऐसा एकबार उस शुद्धात्मा का स्वरूप जानकर निर्वाणपर्व के दिन उसके स्मरणपूर्वक, उसके चिंतनपूर्वक, उसकी अनुभूतिपूर्वक उसकी उपासना करें तो यह पर्व हमारा धन्य हो जाएगा। (४५:४४)



प्रस्तुति : जैन अध्ययन केन्द्र, झालरापाटन

